Electronic International Interdisciplinary Research Journal (EIIRJ)

Impact Factor : 0.987

ISSN : 2277-8721

Reviewed Online Journal

(Bi-Monthly)

Mar-April ISSUES

Chief-Editor:

Ubale Amol Baban

www.aarhat.com

2015

INDEX COPERNICUS INTERNATIONAL

CiteFactor
Academic Scientific Journals

ISSN 2277- 8 7 2 1
Electronic International Interdisciplinary Research Journal (EIIRJ)
Bi-monthly Reviewed Journal Mar- April 2015

परंपरागत भारतीय शिक्षा में भटकाव और वर्तमान संदर्भ में पुनः भारतीयकरण के व्यावहारिक उपक्रम

सुदीप कुमार चौहान

शोधार्थी

देवसंस्कति विश्वविद्यालय,

हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति वास्तव में एक अनमोल धन है। गुरु शिष्य सम्बन्ध, गुरु का शिष्य के प्रति आत्मीय भाव व शिष्य का गुरु के प्रति श्रद्धा व समर्पित भाव आज के आधुनिक शिक्षा प्रणाली में लुप्त हो गया है। प्राचीन उपनिषदों में गुरु–शिष्य विषयक कुछ प्रसंग उपलब्ध होते हैं। इसका अर्थ यह है कि गुरु परिपाटी भी नितान्त प्राचीन है। इसका सीमा निर्देशन करना दुष्कर है। वैदिक काल में ही गुरु परम्परा का जो बीज था, वही ब्राह्मण–ग्रन्थों में स्पष्टतया परिलक्षित हुआ और धीरे–धीरे स्मृतियों, पुराणों और भक्तिग्रन्थों में पल्लवित होता हुआ किसी समय अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ। रामचरित मानस में भी विषेषतः 'मानस' में ऐसे प्रसंगो की कमी नहीं है जहाँ गुरु–महिमा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसी न किसी पात्र के मुखार विन्द से नहीं करवाया गया हो। गुरु का भक्ति से भी बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। तुलसी ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया है कि गुरु का आश्रय पाये बिना कोई भी व्यक्ति संसार–सागर को पार नही कर सकता है। परम कल्याण–आकांक्षी शिष्य सर्वप्रथम गुरु की शरण ढूँढे, तदुपरान्त अन्य साधनों के उपयोग का अवसर आता हैं तुलसी का यह दृढ विश्वास था कि निरभिमान भाव से गुरु की शरण में जाने पर सुखनिधान भगवान की प्राप्ति अवश्य होती है। स्वयं तुलसी ने भी भक्ति का राजमार्ग गुरु के प्रसाद से ही देखा था। अपनी प्रगाढ़ गुरु–भक्तिवश उन्होनें ऐसा विचार भी प्रकट किया है कि अनन्य भगवत्प्रेम की प्रतिष्ठा के लिए गुरु–सेवा और गुरु के द्वारा बताये गये सन्मार्ग का अनुसरण करना साधक के लिए परमावश्यक है। गुरु के वचन–रूपी सूर्य किरणों से ही शिष्य के मोहान्धकार–भरित ह्रदय से तम की निवृत्ति होती है। गुरु शिष्य में विमल विवेक की प्रतिष्ठा करता है तथा संसार से उद्धार करता है। इसलिए गुरु का आश्रय ढूँढना अनिवार्य है। गुरु का भक्ति क्षेत्र में भी उच्च स्थान है। ईश्वर के नाम – जप सम्बन्धी मर्म को भी गुरु ही समझाता

है तथा गुरु की सहायता के बिना भक्ति सांगोपांग सम्पन्न नहीं हो सकती है। गुरु सेवा से लाभान्वित होने वालों में तुलसी रचित 'मानस' में वर्णित काग भुषुण्डि का स्थान भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उन्होनें अपने पूर्व जन्म की शूद्र देह में, परम साधु, शिवभक्त ब्राह्मण गुरु की सेवा करके नाना प्रकार के शुभ उपदेश तथा शिवमन्त्र का लाभ लिया। शिष्य के लिए आवष्यक है कि अपने गुरु को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखें और अपने अनिवार्य कर्त्तव्यों का पालन करे, इसका निर्देष प्राचीन ब्राह्मण–धर्मग्रन्थों में मिलता हैं गुरु पिता से भी बढ़कर है, शिष्य जब तक उसके पास रहता है, उसका कर्त्तव्य है कि पूर्णरीति से गुरु की आज्ञा का पालन और उसकी सुश्रूषा करे ।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में जहॉ शिक्षा विद्यार्थियों की आवश्यकता पर निर्भर होती थी वहीं आधुनिक शिक्षा से शिक्षक और शिष्य दोनों ही स्वार्थ सिद्धि में लगे हैं। सर्वांगीण विकास जहॉ शिक्षा का उद्देश्य हुआ करता था वहीं आज शिक्षा एक व्यवसाय बन गयी है। शिक्षक जहॉ पहले यह सोचता था की ज्ञान बॉटने से ज्ञान बडता है, वहीं आज का शिक्षक यह सोचता है कि ज्ञान बॉटने से धन बढता है। प्राचीन शिक्षा की तरह आज की शिक्षा व्यवहारिक न होकर बस एक यांत्रिक–सी हो गयी है जिसकी धुरी सरकार के हाथ में है। आज के अध्यापक का उद्देश्य सरकार द्वारा निर्धारित पाठयक्रम को पूरा करना रह गया है न कि प्राचीन काल के गुरुओं की तरह छात्रों को व्यावहारिक गुर सिखाना। यही कारण है कि एक ओर तो शिक्षा के स्तर में गिरावट आई और दूसरी ओर शिक्षण में स्वार्थ के वशीभूत भटकाव आता चला गया।

ऐसी स्थिति में ही स्वामी दयानन्द नें 'वेदों की ओर लोटो' (ठंबा जव टमकें) का नारा लगाया और प्राचीन शिक्षा के आदर्शें की स्थापना पर बल दिया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में देश में राष्ट्रीयता की लहर जोरों से फैली, जिससे अनेक राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों तथा गुरुकुलों का जन्म हुआ। गुरुकुल कांगडी हरिद्वार (1901) इसी का परिणाम है। इन गुरुकुलों का मूल ध्येय प्राचीन शिक्षा आर्देशों के आधार पर शिक्षा की व्यवस्था करना था। स्वामी दयानन्द के अनुसार भारतीय संस्कृति व सभ्यता, साहित्य तथा दर्शन का पुनरुत्थान करना आज कल बहुत आवश्यक है। आज भी देश के विभिन्न राज्यों में डी.ए.वी. नाम की शिक्षा संस्थाओं का संचालन आर्य समाज संस्थान द्वारा किया जाता है। सादा जीवन, उच्च विचार, ब्रहचर्य का पालन, गुरु–शिष्य का निकटता का संबंध, प्राकृतिक वातावरण में छात्रों के शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक शक्तियों का विकास आदि बातों का समावेश आधुनिक शिक्षा प्रणाली में किया

जाना चाहिये। शिक्षा–प्रणाली में प्रार्थना व व्याख्यान, शंका–समाधान, तर्क, वाद–विवाद, मनन–चिन्तन और स्वाध्याय आदि को प्रमुख स्थान देना आवश्यक है। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास शिक्षा–पद्धति का लक्ष्य होना चाहिये।

आधुनिक काल में जहॉ देश में पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का प्रभाव हमारी शिक्षा पर पड़ रहा है, प्राचीन शिक्षा आर्देशों को विद्यार्थी जीवन के लिये घटित करना एक कठिन कार्य है। इसके लिये देश की समुचित उन्नति तथा विकास के लिये एक सुसंगठित वह सुनियोजित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की स्थापना आवश्यक है। इस क्रम में शिक्षा के ढांचे की नींव प्राचीन शिक्षा आर्देशों पर दृढता से रखनी होगी। साथ ही हम अपनी आँखे आज की वैज्ञानिक तथा टैक्नीकल उन्नति की ओर से भी बन्द नहीं कर सकते।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उच्च चरित्र निर्माण तथा धार्मिक व नैतिक शिक्षा की विशेष आवश्यकता है। आज्ञाओं का उल्लंघन तथा अनुशासनहीनता प्रतिदिन की समस्या बन गयी है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अनुशासन हीनता को दूर करने तथा छात्र अध्यापक संबंधों में सुधार लाने के लिये प्राचीन शिक्षा आर्देशों का पुनर्गठन आवश्यक है, जिससे अध्यापक का समाज में सम्मान बढे और उसके प्रति अभिभावकों तथा छात्रों में श्रद्धा, भक्ति, सेवा तथा आदर भाव स्थापित हो सके। इन प्राचीन शिक्षा आदेर्शों पर चल कर ही हम देश के लिये एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना का निर्माण कर सकते हैं। देश में प्रचलित शिक्षा प्रयोग बेसिक शिक्षा, विश्व–भारती, अरविंद आश्रम, गुरुकुल कांगडी तथा वनस्थली विद्यापीठ आदि संस्थायें प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के पुनरुत्थान के ज्वलन्त उदाहरण है। इन सब को आरम्भ करने का उद्देश्य ब्रहचर्या पर बल देने वाली प्राचीन संस्थाओं का पुनरुत्थान तथा प्राचीन भारतीय साहित्य व दर्शन को पुनर्जीवित करना है।

हम भारतवासियों को अपनी भारतीय सभ्यता व संस्कृति को पहचानना चाहिये और भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को उसकी वास्तविक आत्मा को स्वीकार करना चाहिये। अतः हमें एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का सृजन करना होगा, जिसकी आत्मा भारतीय है और उसका बाह्य स्वरुप विज्ञान तथा तकनीकी के विकास से प्रभावित हो।

सन्दर्भ

मनुस्मृति, 1:18–21

प्रो0 एस0पी0 रूहेला : विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा ।

दिनेश चन्द्र जोशी, चतर सिंह मेहता – शिक्षक प्रशिक्षण के सिद्धान्त एवं समस्याएँ ।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद – गुणात्मक अध्यापक शिक्षा का पाठ्यचर्या प्रारूप 1999 ।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद – वार्षिक प्रतिवेदन ।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद – शिक्षक प्रशिक्षण में मूल्य शिक्षण 2002 ।

गुप्ता डा0 (श्रीमती) अरुणा एवं टण्डन डा0 (श्रीमती) उमा (2008), उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आलोक प्रकाशन, लखनऊ, इलाहाबाद ।

डा0 कृष्णकान्त : वेदान्तसार, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ ।